Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2024 = 8.153
https://www.srjis.com/issues_data/236
Peer Reviewed & Refereed Journal, JULY-AUG 2024, Vol- 13/84

संस्कृत साहित्य में काव्य–शास्त्र और अलंकार

डॉ. छगन लाल शर्मा
एसो0 प्रो0– संस्कृत विभाग, आर0 बी0 एस0 कॉलेज, आगरा
प्रीति
(शोध छात्रा), (रजि0नं. 309/2020/5196)
Affiliated to Dr B R Ambedkar University AGRA

Paper Received On: 20 July 2024
Peer Reviewed On: 24 August 2024
Published On: 01 September 2024

Abstract

काव्य में अलंकार सदा विद्यमान रहता है, कहीं स्फुट रूप से तो कहीं अस्फुट रूप से, इसका नितान्त अभाव तो आचार्य मम्मट को भी अभीष्ट नहीं था। इतना स्वीकृत कर लेने पर कि काव्य में कोई न कोई अलंकार–चाहे उसका कोई नाम रखा गया हो अथवा नहीं–किसी न किसी रूप से, काव्य शरीर के शोभाकारक रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। यह शंका उठना स्वाभाविक है कि अल ारवादी आचार्यों का दृष्टिकोण भी तो यही था कि काव्य में अलंकार का सद्भाव अनिवार्यतः रहता है। अतः दोनों वर्गों के आचार्यों के दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः अलंकारवादी आचार्यों के अनुसार काव्य के आन्तरिक तत्त्व रस, ध्वनि आदि भी अलंकार कहलाते हैं। किन्तु इधर आचार्य आनन्दवर्द्धन आदि परवर्ती आचार्यों के मत में, अलंकार से तात्पर्य काव्य का केवल वाह्य शोभाकारक उपकरण ही है। इसके अतिरिक्त अल ारवादी आचार्यों के मत में अलंकार के अस्फुट प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। निष्कर्षतः अलंकार एक बाह्यपरक काव्य तत्त्व हैं जो काव्य का अनिवार्य साधन है, जो कि व्यापक भी है किन्तु आन्तरिक तत्त्व न होने के कारण 'काव्यात्मा' की संज्ञा प्राप्त करने से वंचित रह गया।

शोध में प्रयुक्त शब्दावली: *काव्यात्मा, भूतव्यंग्य–काव्य, अन्यत काव्य, अर्थगत।*

संस्कृत साहित्य में अलकार शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थः–

'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति अलम् उपपद में कृ धातु से संज्ञा अथवाकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय के योग से होती है। इस आधार पर एक तो इसकी व्युत्पत्ति की जाती है कि 'अलंकरोति इति अलंकारः' अर्थात जो अलंकृत करता है, वह अलंकार है। दूसरे रूप में इसकी व्युत्पत्ति होती है–'अलंङ्क्रियतेऽनेन इत्यलंकार' अर्थात् जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है, इसलिये यह अलंकार है। अर्थात अव्यय रूप में

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अलम् शब्द का अर्थ होता है, परिपूर्ण, पर्याप्त, योग्य। इस दृष्टि से अलंकार शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ होगा– जो तत्त्व परिपूर्ण पर्याप्त एवं सुयोग्य बना दे वह अलंकार है। इस प्रकार योगरूढ़ शब्द होने के कारण अलंकार शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ होगा 'जो तत्त्व या धर्म सौन्दर्य को परिपूर्ण बना दे, पर्याप्त योग्य बना दे, वह अलंकार है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि सौन्दर्य की सत्ता तो पहले रहा करती है, अलंकार उसे परिवर्द्धित कर पूर्ण समग्र एवं योग्य ही बनाता है।

अलंकार–सिद्धान्तः

संस्कृत साहित्य में अलंकारों का सर्वप्रथम निरूपण किसने किया इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। आचार्य राजशेखर के एक कथन के अनुसार शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव अर्थात् स्वभावोक्ति औपकायन ने उपमा, कुबेर ने उभयालंकार, तथा चित्रांगद ने चित्र–काव्य से सम्बन्धित ग्रन्थों का निर्माण किया। सर्वप्रथम आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ में चार अलंकारों उपमा, रूपक, दीपक और यमक का उल्लेख मिलता है, किन्तु आचार्य भरत के समय तक अलंकार सिद्धान्त का जन्म नहीं हुआ था। अल ार सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भामह को माना जाता है। जिनका प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यालंकार है। आचार्य भामह ने निम्नलिखित 34 अलंकारों का निरूपण किया–

(1) अनुप्रास (2) यमक (3) रूपक (4) दीपक (5) आक्षेप (6) अर्थानतरन्यास (7) व्यतिरेक (8) विभावना (9) समासोक्ति (10) अतिश्योक्ति (11) यशासंख्या (12) उत्प्रेक्षा (13) स्वभावेक्ति (14) प्रेयः (15) रसवत (16) ऊर्जस्विन (17) पर्यावोक्त (18) समाहित (19) उदान्त (20) श्लिष्ट (21) अपहृति (22) विशेषोक्ति (23) विरोध (23) तुल्ययोगिता (24) अप्रस्तुतप्रशंसा (25) व्याजस्तुति (26) निदर्शना (27) उपमारूपक (28) उपमेयोपमा (29) सहोक्ति (30) परिवृत्ति (31) ससंदेह (32) अनन्वय (33) उत्प्रेक्षावयव (33) संसृष्टि (34) भाविक

अलंकारों के आधार पर आचार्य भामह ने अप्रत्यक्ष रूप से अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व घोषित किया। आचार्य भामह का अनुकरण आचार्य दण्डी एवं आचार्य उद्भट ने किया एवं आधुनिक आचार्यों में रेवा प्रसाद द्विवेदी ने 'अलं ब्रहम्' नामक ग्रंथ की रचना कर अलंकार के

महत्व को स्पष्ट किया। जिससे कि इन आचार्यो की निम्नलिखित मान्यताओं से स्पष्ट है वे अलंकार को काव्य का सर्वस्व एवं अनिवार्य तत्त्व घोषित करते थे।

(1) आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य का एक आवश्यक आभूषक तत्त्व मानते हुए कहा है कि–

(क) जिस प्रकार किसी नारी का सुन्दर मुख आभूषणों के बिना शोभित नहीं होता, उसी प्रकार आचार्यों द्वारा प्रस्तुत रूपक आदि अलंकार काव्य में आवश्यक है।

रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।

न कान्तमपि निर्भूषं वनितामुखम्।।

आचार्य दण्डी के शब्दों में –'काव्यशोभाकरान्' धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते। अर्थात् अनुप्रास, उपमा आदि तो अलंकार है ही, गुण, रस ध्वनि आदि अनेक काव्यतत्त्व भी इसी नाम से अभिहित होते हैं।

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

निष्कर्षतः आचार्य आनन्दवर्द्धक, आचार्य मम्मट, आचार्य विश्वनाथ और आचार्य जगन्नाथ– इन चारों आचार्यों द्वारा प्रस्तुत अलंकार लक्षण का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है :–

1. जिस प्रकार कटक–कुण्डल आदि आभूषण शरीर की प्रायः शोभा करते हैं और कभी नहीं भी करते, उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार शब्दार्थ रूप काव्य शरीर की प्रायः शोभा करते हैं, और कभी नहीं भी करते। इस प्रकार अलंकार 'शब्दार्थ' के अस्थिर धर्म हैं।

2. अलंकार शब्दार्थ की शोभा द्वारा परम्परा सम्बन्ध से रस का उपकार ठीक उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार शरीर पर धारण किये गये आभूषणोंद्वारा प्रकारान्तर से आत्मा का उत्कर्ष होता है।

3. अलंकार किन्हीं परिस्थितियों में रस का उपकार भी नहीं करते और कभी तो रस का उपकार भी कर देते हैं और कभी रस का अपकार भी नहीं करते।

4. आचार्य जगन्नाथ के अनुसार अलंकार काव्य की आत्मा व्यंग्यार्थ ध्वनि में रमणीयता उत्पन्न कर देते हैं।

अन्ततः यह उल्लेख है कि ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धन ने समस्त काव्य के सभी रूपों को ध्वनि सिद्धान्त के विशाल अन्तराल में समाविष्ट करने के उद्देश्य से ध्वनि के तारम्य के आधार पर काव्य को तीन प्रमुख प्रकारों मे विभक्त करते हुए व्यंग्यार्थ–प्रधान काव्य को ध्वनि–काव्य नाम दिया, व्यंग्यार्थाप्रधान काव्य को गुणी भूतव्यंग्य–काव्य और इसे अन्यत काव्य

को चित्र काव्य और इसी चित्रकाव्य को आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अलंकार निबन्ध भी नाम दिया है। आगे चलकर उनके 'अन्यत' शब्द की व्याख्या में ही आचार्य मम्मट ने मानो चित्रकाव्य स्वीकृत किया। जहाँ काव्य अव्यङ्य अर्थात् स्फुट व्यंग्यार्थ–रहित हो। अलंकारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है– शब्दगत्, अर्थगत और शब्दार्थगत्। आचार्य मम्मट के अनुसार इस विभाजन का आधार अन्वय–व्यतिरेक सम्बन्ध है। जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय कहलाता है और जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस शब्द के कारण चमत्कार हो, उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर यदि चमत्कार माना जाता है, जहाँ दोनों स्थितियाँ बनी रहें वहाँ शब्दार्थालंकार अर्थात उभयालंकार माना जाता है।

अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकार है, उपमा, रूपक आदि अर्थालंकार हैं और पुनरूक्तवदाभास उभयालंकार है। यह ज्ञातव्य है कि शब्दालंकारों में अर्थ की और अर्थालंकारों में शब्द की सत्ता तो रहती है और कभी–कभी क्रमशः इनका चमत्कार भी रहता है, किन्तु नामकरण प्रधानता के ही आधार पर किया जाता है– (1) जहाँ शब्द का चमत्कार अपेक्षाकृत अधिक होगा वहाँ शब्दालंकार माना जाएगा, जैसे अनुप्रासादि (2) जहाँ अर्थ का चमत्कार अपेक्षाकृत अधिक होगा, वहाँ अर्थालंकार जैसे उपमादि (3) जहाँ शब्द और अर्थ का चमत्कार समान रूप से होगा वहाँ उभयालंकार जैसे पुनरूक्तवदाभास। आचार्य आनन्दवर्द्धन आदि परवर्ती आचार्यों के मत में अलंकार से तात्पर्य काव्य का केवल वाह्य शोभाकारक उपकरण ही है। इसके अतिरिक्त अलंकारवादी आचार्यों के मत में अलंकार के अस्फुट प्रयोग का प्रश्न

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

ही नहीं उपस्थित होता। निष्कर्षतः अलंकार एक बाह्यपरक काव्य तत्त्व हैं जो काव्य का अनिवार्य साधन है, जो कि व्यापक भी है किन्तु आन्तरिक तत्त्व न होने के कारण 'काव्यात्मा' की संज्ञा प्राप्त करने से वंचित रह गया।

इस सम्बन्ध में एक स्थिति और भी उल्लेखनीय है– सरस काव्य में अलंकार का अस्पष्ट अर्थात् अस्फुट रूप से प्रयोग न होना। किन्तु काव्य में इस प्रकार की स्थिति की संभावना ही नहीं है, क्योंकि अल ारों के लगभग तीन सौ भेदापभेदों में से कोई न कोई भेद अस्फुट रूप से ही सही, विद्यमान होगा। यदि इन अलंकारों में से कोई न भी होगा तो कोई अन्य अलंकार अस्फुट रूप से अवश्य विद्यमान होगा क्यो ंकि अलंकार के अन्तर्गत केवल यही तीन सौ के लगभग बाह्य शोभाकारक अलंकार–भेद तो गृहीत नहीं किये जा सकते, इस प्रकार के अन्य भी अनेक शोभावह उपकरण अलंकार नाम से अभिहित किये जा सकते हैं। इस प्रकार काव्य में अलंकार का नितान्त अभाव– इसका अस्फुट रूप से भी प्रयोग न होना– स्वीकृत नहीं किया गया।

संदर्भ :

1. काव्यमीमांसा 1–1 पृ0सं0 1–2
2. संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, अमरनाथ पाण्डेय, पृ0सं0–18
3. काव्यालंकार (भामह) 3–6, पृष्ठ 29
4. काव्यादर्श 2.292 पृष्ठ–188
5. ध्वन्यालोक 3.42 पृष्ठ 309
6. साहित्यदर्पण 10/1 पृष्ठ– 665
7. काव्यालंकार सूत्राणि 3/1/1

Copyright © 2024, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies